निकट

संयुक्त अरब इमारात से प्रकाशित हिन्दी की पहली साहित्यिक पत्रिका

सम्पादक : कृष्ण बिहारी
अतिथि सम्पादक : राकेश बिहारी

जुलाई-दिसम्बर 2013
अंक : 7
मूल्य : 25 रुपए

पहली कहानी : पीढ़ियाँ साथ-साथ

भाग-1

संयुक्त अरब इमारात से प्रकाशित
हिन्दी की पहली साहित्यिक पत्रिका

निकट

सम-सामयिक साहित्य की अर्धवार्षिकी

वर्ष-7, अंक-7, जुलाई-दिसम्बर, 2013

• संस्थापक
अशोक कुमार
कान्ता भाटिया

• सलाहकार
राजेन्द्र राव

• सम्पादक
कृष्ण बिहारी

• अतिथि सम्पादक
राकेश बिहारी

• कार्यकारी सम्पादक
प्रज्ञा पाण्डेय

• सह सम्पादक
अमरीक सिंह दीप
सुभाष सिंगाठिया

• उप सम्पादक
रामनारायण त्रिपाठी

• आवरण
राजीव मिश्रा

• रेखांकन/चित्र
उत्पला जोशी, राजवंत राज
डॉ. नवज्योत भनोत, कुबेर दत्त,
राजेन्द्र स्वामी 'लवली',
डॉ. वीना बंसल, सरिता लूनिया,
वर्तिका सिंगाठिया, श्रेयसी ठाकुर,
मनिता रात्रा

• कानूनी सलाहकार
राजेश तिवारी
2/241-विजय खण्ड,
गोमती नगर,
लखनऊ (उ. प्र.), भारत

• मूल्य
भारत में 25/- रुपए
खाड़ी में 10 दिरहम,
यू.के. और अमेरिका
में 5 डालर

• सम्पादकीय कार्यालय
Krishna Bihari
P.O. Box No. 52088, Abu Dhabi, UAE
E-mail : krishnatbihari@yahoo.com
Mobile Phone : +971554561090

• रचनाएँ भेजने का पता

आबूधाबी में

Krishna Bihari
P.O. Box No. 52088, Abu Dhabi, UAE
E-mail : krishnatbihari@yahoo.com
Mobile Phone : +971554561090

भारत में

• प्रज्ञा पाण्डेय
89-तृतीय तल, लेखराज नगीना
सी-ब्लॉक, इन्दिरा नगर (शेखर हॉस्पीटल के पास)
लखनऊ (उत्तरप्रदेश)
मो. 09532969797 E-mail : pandepragya30@yahoo.co.in

• सुभाष सिंगाठिया
15-नागपाल कॉलोनी, गली नं. 1,
श्रीगंगानगर-335001 (राजस्थान)
मो. 09829099479 E-mail : poorvakathan@gmail.com

• 'निकट' से सम्बन्धित समस्त विवाद केवल लखनऊ (उत्तर प्रदेश) हाईकोर्ट के अधीन होंगे।
• 'निकट' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है

इस अंक में

सम्पादकीय

2. समय से बात-7 : कृष्ण बिहारी
5. आपकी बात आपके पत्र
8. नवान्न की खुशबू और दूध के दाँत... : राकेश बिहारी

कहानियाँ

11. प्रतिहिंसा : राजेन्द्र यादव
18. मै हार गई : मन्नू भंडारी
23. जोतसी ने कहा था : काशीनाथ सिंह
28. सफ़ेद सेनारा : चित्रा मुद्गल
34. नये-पुराने माँ-बाप : गोविंद मिश्र
37. डूबने से पहले : शीला रोहेकर
42. शिफ्ट : राजेन्द्र राव
53. रुकावट : मृदुला गर्ग
56. प्रभाव : स्वयं प्रकाश
59. क़िस्सा एक बीमा कम्पनी की एजेंसी का : संजीव
65. बोसीदनी : प्रियंवद
70. परदे : रोहिणी अग्रवाल
74. लावारिस पिता : जयनंदन
79. सिर्फ एक दिन : जया जादवानी
85. नाम : अज्ञात : राकेश कुमार सिंह
88. ऐ अहिल्या! : अल्पना मिश्र
95. पड़ताल : पंकज मित्र
102. झगड़ा : वंदना राग
105. मोनोक्रोम : प्रभात रंजन
110. सपना सुख : रवि बुले
118. सुख : कविता
123. फुर्सत : मोहम्मद आरिफ
129. स्कॉलरशिप : कैलाश वानखेड़े
137. प्रार्थना के बाहर : गीताश्री
144. पिंडदान : जयश्री रॉय

अन्य सामग्री

152. उसी को है जनवरी उसी का है अगस्त : अपूर्व जोशी
155. प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ : सुभाष सिंगाठिया
157. कहीं गुल मोहर, कहीं बुरुंश... : प्रज्ञा पाण्डेय
160. पहली कहानी : समय से संवाद : सुभाष सिंगाठिया

'निकट-7' पर प्रतिक्रियाएँ और 'निकट-9' के लिए मौलिक रचनाएँ आमंत्रित हैं - संपादक

सम्पादकीय

समय से बात

कृष्ण बिहारी

'निकट' ने 22 जून, 2013 को अपने सात वर्ष पूरे किए। पत्रिका को बहुत स्नेह मिला, बहुत आलोचना हुई। राजेन्द्र यादव ने 'हंस' जनवरी, 2011 का सम्पादकीय ही 'निकट' पर केन्द्रित किया। उनके पास कई सवाल थे। ख़ासतौर पर उनका सवाल था कि 'निकट' में ख़ास क्या है? इसका ज़वाब तो मैं उन्हें आज भी नहीं दे सकता मगर इतना जरूर कहना चाहूँगा कि धीरे-धीरे ही सही, मैं पत्रिका को रास्ते पर ला रहा हूँ और एक दिन बता सकूँगा कि इसमें ख़ास क्या है। अब इस अंक के बारे में तो मित्रो, यह ख़याल सात-आठ महीने पहले अचानक आया कि पत्रिकाएँ 'युवा लेखन', 'नव लेखन' और भी इसी तरह के अंक निकालती आई हैं क्यों न ऐसा अंक निकाला जाए जिससे आज के रचनाकारों को अपने ही समय में होते हुए परिवर्तन का पता चले। यह एक संयोग ही है कि आज लगभग पाँच पीढ़ियाँ एक साथ रचनाकर्म में लगी हुई हैं। 1945-47 के समय की भाषा कैसी थी, मुहावरे क्या थे, कथानक क्या था, शिल्प कैसा था, प्रयोग और ट्रीटमेण्ट क्या था? और फिर एक लम्बे समय के बीच कैसे-कैसे बदलाव, घुमाव और मोड़ आए कि कथा- साहित्य अपनी राहें बदलता रहा। साथ ही यह भी कि किसी ने रचनाकार होने की जहमत क्यों और किन परिस्थितियों में की? यह उत्सुकता बढ़ती गई और एक योजना ने आकार ले लिया। मुझे यह भी लगा कि सीखने के लिए कोई उम्र नहीं होती और सीखना भी जिन्दगी भर चलता रहता है जो सीखने से गुरेज़ या परहेज करते हैं वे समय से पहले ख़त्म हो जाते हैं। योजना को मित्रों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों के बीच शेयर किया और बात आगे बढ़ी। इस अंक के लिए राकेश बिहारी ने मेरी ओर से सभी प्रयास किए हैं इसलिए यह दायित्व भी उनका ही बनता है कि इन कहानियों पर अपनी बात कहें। हाँ, अंक आने से पहले ही चर्चा में आ गया है और इस चर्चा-कुचर्चा का ज़वाब मैं अगले अंक 'पहली कहानी : भाग- 2' में दूँगा फिलहाल, मैं 'समय से बात' करना चाहता हूँ...

देश और दुनिया में हर दिन बहुत कुछ घट रहा है। घटनाएँ इतनी तीव्र गति से घट रही हैं कि हर घटना मात्र सूचना बनकर ख़त्म हो रही है। विमर्श भी दम तोड़ रहे हैं। जीवन की जिस क्षण भंगुरता की बात संत-महात्मा करते आए हैं। वह आज हर घटना के साथ सच होती दिख रही है। मनुष्य का होना न होना, दोनों स्थितियाँ प्रश्नों के घेरे में खड़ी हैं। मनुष्य का न होना तो समझ में आता है लेकिन होते हुए भी समाज में अनुपस्थित होना चिंता का विषय है। यह आत्मकेन्द्रित जीवन की जो उत्तर आधुनिकता है वही मुझ जैसे लोगों को परेशान कर रही है। बहुसंख्य लोग या तो इस स्थिति में असम्पृक्त हैं या फिर इसमें मज़ा ले रहे हैं। दो साल पहले दिल्ली में किसी ऑटो रिक्शा के पीछे लिखा देखा कि यदि आपका पड़ोसी दु:ख में है और आपको नींद आ जाती है तो अगला नम्बर आपका है। क्या हम सब केवल अपना नम्बर आने पर ही जागेंगे? और यदि जागेंगे भी तो कितने अकेले होंगे? दूर से तमाशा देखना या तटस्थ होकर निकल जाना या फिर बिना देखे गुज़र जाना किन हालात की ओर इशारा करता है? दो-तीन बार मैंने सड़क पर भयावह

दुर्घटनाएँ देखी हैं। मैं अपनी कार रोककर घायलों के पास तक गया हूँ। उनकी मदद की है लेकिन एक बार जो भयावह दृश्य देखा जिसमें कार चालक की खोपड़ी सिर्फ मकड़ी का जाला भर रह गई थी तो हिम्मत जवाब दे गई और उसके बाद न जाने कितनी बार सामने सड़क पर दुर्घटना होते देखा लेकिन दुर्घटनाग्रस्त वाहन या उसमें घायल के पास जाने का साहस नहीं हुआ। कहीं हम सबके साथ ऐसा ही तो नहीं हुआ कि किसी घटना ने हमें इस तरह डरा दिया कि हमने आँखें बंद करके उसे न देखने का एक तरीका पा लिया। अत्याचार, अनाचार और भ्रष्टाचार के बेहयाई वृक्षों के फलने-फूलने की जड़ में हमारा न देखना खाद-पानी का काम कर रहा है। क्या हम इसे महसूस कर रहे हैं? या केवल अपना नम्बर आने पर ही हमारी नींद टूट रही है? पिछले वर्ष अन्ना हजारे के साथ जो जनान्दोलन खड़ा हुआ वह क्या क्षण भंगुर जनोन्माद था? कहाँ गए वे लोग जो समग्र परिवर्तन की एक लहर को ला पाने की कोशिश में जयप्रकाश नारायण के साथ कभी एक साथ दिखे थे? मुझे लगता है कि सत्ता और अस्पृश्य धन की ताकत ने सबको भयाक्रांत करके तोड़ दिया और फिर वही ढाक के तीन पात वाली यथास्थिति समाज की स्थायी तकदीर होकर रह गई। निराशा के इस प्रसाद की जड़ में हमारा भय ही हमें हर नए रास्ते पर चलने से बलपूर्वक रोक रहा है, इसके उलट एक दूसरी स्थिति भी है। दस प्रतिशत लोगों ने देश को मनमाने ढंग से बंधक बना लिया है। अपनी अराजकता से इन लोगों ने राजनीति, अफसर शाही, व्यापार, आर्थिक क्षेत्र और अपराध पर संगठित रूप से कब्जा कर रखा है। इन्हें किसी का डर नहीं है। कानून इनका दास है या फिर वह खिलौना जिसे ये जैसा चाहें उस ढंग से उससे खेल रहे हैं। इनकी सीनाजोरी, दादागिरी, हरामखोरी और गुण्डागर्दी के सामने आम आदमी हर तरह से बेबस है। नब्बे प्रतिशत चुप और नज़रें बन्द किए लोगों की वजह से देश आज दुर्गति की दशा को प्राप्त है...

पिछले दिनों देश के सभी टी.वी. चैनेल बलात्कार की ख़बरों से अटे रहे, यूँ लगने लगा कि इसके अलावा कहीं कुछ और नहीं हो रहा। टी.वी. पर न्यूज़ देखने से भी मन घबराने लगा। परिवार के साथ बैठकर तो टी. वी. देखना वैसे भी कम होता गया है। इतने घटिया ढंग से पिक्चराइज्ड विज्ञापन आते हैं कि उन्हें अकेले में देखना भी असह्य है। बलात्कार तो एक अपराध है। इसके बावजूद यह दुनिया भर में घटता है। किसी नेता का यह कहना कि आपको दिल्ली का दिखाई देता है, मध्यप्रदेश का नहीं। यह बयान वैसा ही है कि आप करेंगे तो हम भी करेंगे। बलात्कार उन देशों में भी हो रहा है जहाँ बहुत कठोर कानून हैं, अन्तर इतना है कि जहाँ कठोर कानून हैं वहाँ इस घटना का प्रतिशत कम है। हमारे देश में कानून तो है लेकिन उसका डर अपराधियों को इसलिए नहीं है क्योंकि उन्हें पता है कि कुछ होना नहीं है। जब बड़े और प्रभावशाली लोग बचे जा रहे हैं तो उनका भी कुछ नहीं होगा। यह धारणा बलवती होती जा रही है। इन घटनाओं को लेकर तरह-तरह के बयान भी आए हैं। किसी ने कहा कि ऐसी घटनाएँ तो होती रहती हैं। किसी ने कहा कि लड़कियाँ अपने पहनावे पर ध्यान रखें तो किसी ने कहा कि माँस-मदिरा का सेवन रोका जाए। मेरा कहना है कि घृणित घटनाओं को होते रहने के तर्क पर होने दिया जाए यह अस्वीकार्य है। लड़कियाँ कैसे कपड़े पहनें, यह उनपर छोड़ा जाए। हर संस्था और संस्थान का एक ड्रेस कोड होता है। वह अनिवार्य है। अब इसके बाद अगर कोई बिना कपड़ों या कम कपड़ों में सार्वजनिक स्थान पर अपनी प्रदर्शनी लगाने पर तुला है तो उसे यह हक नहीं है कि वह घूरे जाने को अपने खिलाफ माने और एफ.आई.आर. कराए जो चाहता है कि लोग उसे जरूर देखें तो उसे देखे जाने की शिकायत नहीं करनी चाहिए। शालीन पहनावे की अपनी गरिमा होती है इससे इनकार नहीं किया जा सकता। हम खुद सोचें कि अपनी बेटी, बहन और बीवी को किन कपड़ों में अपने साथ लेकर सार्वजनिक स्थानों पर जा सकते हैं। अब बात मदिरा की तो, मदिरा का सेवन बहुत से देशों में आम है और बहुत से देशों में मदिरा पर प्रतिबंध हैं लेकिन बलात्कार का प्रतिशत वहाँ हिन्दुस्तान से कम है। यह सच है कि मदिरा उद्दीपन का काम करती है लेकिन मदिरा सेवन के बाद लोग अपनी बेटी और बहन को न पहचानें, ऐसा तो होता नहीं, प्राय: घर के लोगों द्वारा किए गए बलात्कार में मदिरा की भूमिका नगण्य होती है। बलात्कार के अधिसंख्य मामलों में दोषी व्यक्ति रिश्तों से जुड़ा हुआ होता है। अधिकतर मामलों में रिश्ते का जिक्र ही शर्मसार कर देता है इसलिए ऐसे मामले या तो उजागर नहीं होते या केवल दबी जबान से चर्चा में रहते हैं, या फिर पीड़ित या पीड़िता चुप रहते हुए इस स्थिति को सहने के लिए अभिशप्त होते हैं। यह ऐसी पीड़ा है जिसे अभिव्यक्त करने के लिए कम से कम कुप्रभावित के पास तो शब्द नहीं हैं। कामातुराणाँ भयं न लज्जा। बिना सहमति के केवल अपनी तृप्ति के लिए किसी से दैहिक सम्बन्ध बनाना और वह भी पीड़ा पहुँचाते हुए, एक जघन्य अपराध है। इस मामले का दुखद पहलू यह है कि जब बलात्कारी और बलत्कृत करीबी रिश्तों में होते हैं या बलत्कृत मासूम है तो उसकी हत्या होने की आशंका बढ़ जाती है। बलात्कारी तो अपनी मानसिक अवस्था की उस रौ में होता है जहाँ वह भय और लज्जा से तब तक परे है जब तक वह अपनी वासनापूर्ति नहीं कर लेता तब तक होश में नहीं होता और होश आने पर उसके सामने यह डर होता है कि उसका अपराध जग-जाहिर हो जाएगा तो उसके सामने हत्या ही विकल्प होता है। आत्महत्या की बात तो वह सभी दरवाजे बन्द होने के बाद सोचता है। बलात्कार से केवल एक जिन्दगी ही बरबाद नहीं होती। बलत्कृत से जुड़े सभी व्यक्ति अपमान के शिकार होते हैं जबकि इस कृत्य में उनका योगदान नहीं होता। स्थिति इतनी बदतर हो गई है कि मनुष्य का मनुष्य पर विश्वास उठ गया है। किसके भरोसे कोई किसी को छोड़े? विशेष